नियमसार, ८७ गाथा।

मोत्तूण सल्लभावं णिस्सल्ले जो दु साहु परिणमदि।
सो पडिकमणं उच्चइ पडिकमणमओ हवे जम्हा।।८७।।

कर शल्य का परित्याग मुनि निःशल्य जो वर्तन करे।
प्रतिक्रमणमयता हेतु से प्रतिक्रमण कहते हैं उसे॥८७॥

साधु की मुख्यता से बात की है।

टीका : यहाँ निःशल्यभाव से परिणत... आहाहा! निःशल्य आता है। तस्सउत्तरी में? उस समय कहा था न प्रवीणभाई! तस्सउत्तरी किया था या नहीं स्थानकवासी में? तस्सउत्तरी निःशल्य-शल्यरहित। मिथ्या शल्य, माया शल्य, निदान शल्य। बहुत विस्तार है। मिथ्या शल्य में बहुत अनन्त प्रकार मिथ्यात्व के हैं। संक्षिप्त में असंख्य। आत्मा पूर्णानन्द स्वरूप से विरुद्ध जो रागादिभाव को अपना मानना, वह मिथ्यादर्शन शल्य है। वह शल्य है, वह चार गति में भटकने का कारण है। आहाहा! वह यहाँ तीन शल्यरहित है।

यहाँ निःशल्यभाव से परिणत... तीन जो शल्य हैं। एक राग का कण और रजकण, वह मेरा है और मैं उसका हूँ, ऐसी जो अन्तर मान्यता है, वह महामिथ्यात्व शल्य है। आहाहा! करोड़पति, अरबपति, लखपति कहलाता है, वह लखपति कहलाता है परन्तु जो पति मानता है, लख का पति हूँ, करोड़ का पति हूँ, वह मिथ्यादर्शन शल्य बड़ी शल्य है। आहाहा! जो अनन्त जन्म और मरण की उत्पत्ति का गर्भ है। मिथ्यात्व गर्भ है। आहाहा! यहाँ कहते हैं **निःशल्यभाव से परिणत...** ये तीन शल्यरहित जिसकी दशा होती है। त्रिकाली आनन्दस्वरूप भगवान का अनुभव होकर निर्मल शुद्ध अतीन्द्रिय आनन्द की

दशा (होती है)। जैसे समुद्र के किनारे ज्वार आता है, वैसे आत्मा की पर्याय में, वर्तमानदशा में अतीन्द्रिय आनन्द का ज्वार आता है, उसे निःशल्यरूप से परिणमित कहा जाता है। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

ऐसे **निःशल्यभाव से परिणत महातपोधन को ही...** महामुनि सन्तों को ही **निश्चयप्रतिक्रमणस्वरूप कहा है।** आहाहा! व्यवहार प्रतिक्रमण करे, मिच्छामि... उसे नहीं। शुद्ध सच्चिदानन्द प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द का रसकन्द है, उसके अनुभव में शल्यरहित होकर परिणति करे, पर्याय में वीतरागी दशा उत्पन्न करे, उसे निःशल्यभाव से परिणत तपोधन, परमार्थ प्रतिक्रमण कहा गया है। आहाहा!

प्रथम तो, निश्चय से निःशल्यस्वरूप परमात्मा... क्या कहते हैं? यह परमात्मा जो स्वयं आत्मा, वह तो निःशल्य है। उसके स्वरूप में शल्य है नहीं। आहाहा! परमात्मा —आत्मा उसे कहते हैं कि जो निश्चय से प्रथम अर्थात् मुख्य तो यह कहना है कि भगवान आत्मा अन्दर अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय शान्ति—ऐसा जो निःशल्यस्वभाव, वह परमात्मा है अर्थात् वह आत्मा है। क्या कहा समझ में आया? यह आत्मा है, वह निःशल्य आत्मा परमात्मा ही है। आहाहा! रागादि तो नहीं परन्तु अल्पज्ञता भी उसमें नहीं है। ऐसा जो यह आत्मा निःशल्यभाव से (विराजमान है)। आहाहा! क्या कहते हैं।

निश्चय से निःशल्यस्वरूप परमात्मा... आहाहा! यह आत्मा जो अन्दर है, उसे तो परमात्मा ने निःशल्य परमात्मस्वरूप ही कहा है। उसमें मिथ्यात्व, निदान, माया, क्रोध, और राग, उसके परमात्मस्वरूप / द्रव्यस्वरूप में है ही नहीं। आहाहा! जो सम्यग्दर्शन का विषय, सम्यक्धर्म की पहली दशा... आहाहा! जन्म के अन्त को लाने की पहली दशा (अर्थात्) सम्यग्दर्शन। उसका जो विषय आत्मा है, वह तो निःशल्य परमात्मा है। आहाहा! किसका? यह (निज आत्मा)। भगवान हो गये, उनकी यहाँ बात नहीं है। आहाहा!

यहाँ तो पहले से उठाया है। मूल बात यह कहनी है कि सच्चा धर्म और सच्चा निःशल्यपरिणमन किसे होता है? कि जो प्रथम अपने आत्मा को निःशल्य परमात्मारूप से जानता है उसे। आहाहा!

दूसरी बात यह कहनी है कि ऐसा परमात्मा कहते हैं, निश्चय से तो वास्तव में

निःशल्यस्वरूप परमात्मा है। आहाहा! अन्दर भगवान सच्चिदानन्दस्वरूप केवल सत्य और पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञान, ध्रुवस्वरूप भगवान अनादि-अनन्त एकरूप जिसकी स्थिति है, ऐसा निःशल्य परमात्मा निश्चय से तो यह परमात्मा निःशल्य है, शल्यरहित ही है। आहाहा! उसे शल्यवाला मानना, मनवाला मानना, रागवाला मानना, पैसावाला मानना, वह तो मिथ्यादर्शन शल्य है। आहाहा! मिथ्या-श्रद्धा की महाशल्य। चौरासी में भटकने की शल्य है। क्योंकि आत्मा तो निःशल्य परमात्मा है। किसका? प्रत्येक का। परमात्मा हो गये, उनकी यहाँ बात नहीं है। आहाहा!

वास्तव में मुख्य मुद्दे की बात यह है कि निःशल्यस्वरूप परमात्मा... आहाहा! परमस्वरूप जो आत्मा अन्दर भगवत्स्वरूप अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, अनन्त वीतरागता, अनन्त स्वच्छता, अनन्त प्रभुता, ऐसी शक्तियों का सागर भगवान आत्मा निश्चय से तो शल्यरहित ही परमात्मा है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा कठिन पड़ता है। यह तो दया पालना और व्रत करना और भक्ति करना, यह सब राग, स्वरूप में है ही नहीं। यह तो निःशल्य परमात्मा है। आहाहा! कठिन काम है।

मिथ्यात्व का प्रतिक्रमण कब होगा?

यह आत्मा शरीर, वाणी, मन, कर्म, लक्ष्मी-पैसे से तो भिन्न हैं, वे मेरे नहीं परन्तु अन्दर पुण्य दया, दान और व्रत के भाव भी मेरे नहीं हैं, मुझमें नहीं हैं, उनमें मैं नहीं हूँ। आहाहा! ऐसा जो आत्मा, मुख्य बात तो यह कहनी है कि निःशल्यस्वरूप परमात्मा, यह आत्मा है। आहाहा! इसमें समझ में आया? यह देह तो मिट्टी-धूल है। पैसा-वैसा वह तो मिट्टी-धूल, जगत की जड़ पुद्गल मिट्टी है। वह मेरे हैं, यह मान्यता तो मिथ्यात्व शल्य है। मिथ्यात्व शल्य है, वही अप्रतिक्रमण है अर्थात् दोष है। आहाहा! तदुपरान्त अन्दर में माया, निदान, पुण्य और पाप के भाव मुझे करने योग्य है और यह पुण्य करूँ तो इसका फल मुझे कुछ स्वर्ग आदि या पैसा आदि, धूल आदि मुझे मिलेगा, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, उस मिथ्यात्वभाव के शल्य से रहित परमात्मा है। आहाहा!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : एक साथ ही जाते हैं। एक जाए तो तीनों साथ में जाते हैं।

नि:शल्लीकरणेन-ऐसा कहा है न? पहले स्थानकवासी में तस्सउत्तरी किया था? नहीं किया। तस्सउत्तरी आता है। पहला णमो अरिहंताणं, पश्चात् तिक्खुत्तो पश्चात् तस्सउत्तरी करणेन। उसमें नि:शल्लीकरणेन (अर्थात्) शल्यरहित होकर मैं मेरा कायोत्सर्ग अर्थात् राग से दूर होकर स्वरूप में स्थिर होता हूँ। आहाहा! तस्सउत्तरी किया था या नहीं? न्यालभाई! नहीं किया होगा। पैसा आदि में निवृत्त कहाँ थे। आहाहा!

मुमुक्षु : मिथ्या जो शल्य है....

पूज्य गुरुदेवश्री : तीन शल्य है। मिथ्याशल्य, निदानशल्य कि यह कुछ पुण्य करूँ तो इसका फल मुझे वहाँ अच्छा मिले। (और तीसरी मायाशल्य है)।

मुमुक्षु : यह तो मिथ्यात्वशल्य....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह निदानशल्य की बात और निदान... है। और मायाशल्य, कपट, कुटिलता। कपट करके सरलता बतलाना, वह भी एक शल्य है। आहाहा!

मुमुक्षु : माया, क्रोध, मान....

पूज्य गुरुदेवश्री : तीनों शल्य एकसाथ ही है।

यहाँ तो दूसरा कहना है कि यह जो आत्मा जो अन्दर वस्तु है, जिसे नौ तत्त्व में आत्मतत्त्व कहते हैं, वह तत्त्व तो नि:शल्यस्वरूप परमात्मस्वरूप ही है। आहाहा! ....पाँच, पचास करोड़ रुपये, बड़ा बँगला पचास-पचास लाख का, स्त्री, पुत्र और धन्धा... ओहोहो! फला-फूला। पाप में फला-फूला दिखायी दे। पाप में।

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! मुख्य बात यह कहनी है कि **प्रथम तो, निश्चय से...** वास्तव में **नि:शल्यस्वरूप परमात्मा को...** यह आत्मा निश्चय से तो नि:शल्यस्वरूप परमात्मा है। उसे व्यवहार से यह शल्य लागू पड़ गये हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! सूक्ष्म बात, बापू! वीतरागमार्ग। वीतरागमार्ग बहुत सूक्ष्म। यह बाहर से ऐसा करो, यह किया, यह किया, यह किया... पैसा उगाहना, मन्दिर बनाना, उसमें लाभ मानना... आहाहा! यह मिथ्यात्वशल्य है।

जगत की चीज़ जगत के कारण टिककर बदलती है। दूसरे प्रकार से कहें तो कोई द्रव्य निकम्मा नहीं है। अर्थात् क्या? कोई भी द्रव्य अपनी पर्याय की अवस्था के कार्यरहित नहीं है। आहाहा! कहाँ जाना जगत को? जगत में, परमात्मा त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव ऐसा

कहते हैं कि इस जगत में कोई भी द्रव्य निकम्मा नहीं है अर्थात् पर्यायरूपी कार्यरहित द्रव्य नहीं है। द्रव्य और गुण तो सब त्रिकाली हैं परन्तु उनका कार्य-पर्यायरूपी कार्यरहित द्रव्य नहीं है, उसे दूसरे ऐसा कहते हैं कि इसकी पर्याय, इसका कार्य मैं करूँ, यह मिथ्यादर्शनशल्य और महापाप है। आहाहा! कठिन बात है, भाई!

सत्यस्वरूप परमात्मा, जिनेश्वरदेव ने जो आत्मा कहा, दूसरों ने वह कहा नहीं। परमेश्वर जिनेश्वर सर्वज्ञ वीतराग ने जो आत्मा कहा, वह निःशल्यस्वरूप परमात्मा है। आहाहा! उसमें राग का अंश नहीं और राग मेरा, ऐसा मिथ्यात्व नहीं और राग करूँ तो उसका कुछ फल मिले, ऐसा उसके स्वरूप में नहीं। आहाहा! थोड़ा परन्तु बहुत समाहित किया है। अन्दर है या नहीं? आहाहा! ....है न? अन्दर है। निश्चय है न? ... है न? आहाहा! बात तो एक यह सुननी चाहिए, प्रभु! अन्दर भगवान जो आत्मा है, वह तो तीन शल्यरहित ही है। त्रिकाल। चाहे तो निगोद में हो, प्याज में हो, लहसुन में हो परन्तु जिसे आत्मा कहते हैं, परमात्मा कहते हैं... आहाहा! वह आत्मा तो निःशल्यस्वरूप ही आत्मा है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : शुरुआत....

पूज्य गुरुदेवश्री : ....नहीं रखा? राग से रहित होकर निःशल्यस्वरूप मेरा है, ऐसी अन्तर्दृष्टि और अनुभव करना, वह करने का है। बाकी सब व्यर्थ है। आहाहा! है या नहीं इसमें? न्यालभाई! यह न्याल करने का रास्ता है। सब ... ... सब अन्य मार्ग में... हैं। भटकने के। आहाहा!

मुमुक्षु : अब क्या करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह कल ही कहता था कि पति-पत्नी दो ही हैं। पैसे बहुत हैं। करोड़, दो करोड़ दे दे तो। परन्तु उसे कुछ कह नहीं सकते। पति-पत्नी दो ही हैं। चार करोड़ से ऊपर रुपये हैं उसके पास। धूल-धूल, मिट्टी। वह मिट्टी मेरी है और मैं उसका हूँ और उसे मैं खर्च कर सकता हूँ, रक्षण कर सकता हूँ, उसका ब्याज कमा सकता हूँ और किसी जगह लगाकर बहुत पैसा अर्थात् व्यापार में भी किसी-किसी को पाँच-दस लाख देकर रुपयों का ब्याज और आधा भाग, ऐसा करके सब व्यवस्था मैं कर सकता हूँ - यह सब मान्यता मिथ्यादर्शन शल्य है।

मुमुक्षु : हम करते हैं, वह कुछ तो सत्य होगा या नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सत्य है न, सत्य है। मिथ्याश्रद्धा है, यह सत्य है। मिथ्याश्रद्धा, यह सत्य है। वह मिथ्याश्रद्धा झूठ नहीं, मिथ्याश्रद्धा सच्ची है। आहाहा! गजब काम, भाई!

वीतराग जिनेश्वरदेव त्रिलोकनाथ परमेश्वर का हुकम है, उनकी आज्ञा में दिव्यध्वनि में यह आया है, वह सन्त जगत को प्रसिद्ध करते हैं। आहाहा! एक लाईन में महा (बहुत) भरा हुआ है। सवेरे यह आया था न कि आत्मा परमार्थ से स्वयं से अकारक है। सवेरे आया था न ? आत्मा स्वयं से अकारक है। वही यह बात है। आहाहा! वह निमित्त परद्रव्य पर इसका लक्ष्य जाता है, इसलिए वह विकार खड़ा करता है, वह निमित्त-निमित्त सम्बन्ध खड़ा करता है, तब उस राग और विकार का कर्ता मिथ्यादृष्टि होता है। उसके स्वभाव में राग का करना और राग के फल को चाहना, ऐसा उसके स्वरूप में है नहीं। आहाहा! समझ में आया ? है इसमें ? यह तो पहली लाईन का अर्थ होता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कठिन पड़े... परन्तु सब बातें... यह तुमने पाँच लाख दिये थे और बारह आने के ब्याज से अभी तक खाया। अब मूल रकम है, वह तो लाओ। ब्याज एक ओर रहा, रकम (लाओ)। रकम नहीं है। ब्याज बारह महीने दूँगा। पहले बारह आने था न, आठ आने (था), अब बढ़ गया है। मुद्दे की रकम है ? इसी प्रकार यह मुद्दे की रकम नि:शल्य परमात्मा है या नहीं ? आहाहा! या राग, पुण्य, दया, दान, विकल्प यही है ? आहाहा! कठिन काम, प्रभु! क्या हो ? .... कम हुए। ... थोड़ा। ... आहाहा! जिस समय में जो पर्याय होनेवाली है, वह जाए कहाँ ? आहाहा!

प्रथम तो,... मुख्य बात यह कहनी है कि निश्चय अर्थात् वास्तव में तो सच्ची, सत्य बात कहें तो नि:शल्यस्वरूप परमात्मा है। स्वयं परमात्मा नि:शल्य स्वरूप ही परमात्मा है। आहाहा! सुना न हो तो जँचे कहाँ से ? ...आहाहा! यह दान का आता है या नहीं ? दान अधिकार में। वहाँ आया है न ? ... पद्मनन्दिपंचविंशति

मुमुक्षु : खुरचन की बात....

पूज्य गुरुदेवश्री : खुरचन की बात है। मिट्टी का जो यह वासाण - हंडी है, उसमें

चावल की खिचड़ी जरा जल जाती है। यह तो चावल-खिचड़ी जो हो वह खाये। फिर वह जली हुई खुरचन खाये। जली हुई को खुरचन कहते हैं। पद्मनन्दि में सिद्धान्त है। वह खुरचन निकाल डाले, तब नीचे नहीं डालते। हमारे यहाँ पालेज में हमारी दुकान के पीछे एक मुसलमान था। वह पत्थर का ऐसा रखता था। पत्थर का... जो बढ़ा-घटा (हो वह) इसमें डाले। बाहर डाले तो धूल हो जाए न! यह तो ७५ वर्ष पहले की बात है। हमारे पालेज की बात है। हमारी दुकान थी, उसके पीछे था। वह खुरचन में डाले। वह खुरचन अकेला कौआ नहीं खाता। कुत्ता अकेला खाता है। अकेला वह खावे और दूसरा आवे तो भौंकने लगे। यदि दूसरा कुत्ता आवे तो भौंकने लगे। कौवे का ऐसा स्वभाव नहीं है। वह जली हुई खुरचन अकेला नहीं खाता। दो-पाँच सबको कांव.. कांव.. कांव.. करके खाता है। वहाँ पद्मनन्दिपंचविंशति में दृष्टान्त दिया था। पद्मनन्दी मुनि भावलिंगी सन्त, दिगम्बर मुनि हैं। वह खुरचन अकेला खाये, वह कुत्ता कहलाता है और उस खुरचन को इकट्ठे करके खाये वे कौवे। इसी प्रकार यह खुरचन बाहर की धूल तुझे खुरचन मिली है। क्यों? कि पूर्व में तेरी शान्ति जली थी, तब यह पुण्यभाव हुआ था। तेरी शान्ति जली थी, यह शुभभाव जली खुरचन है। इस शुभभाव में से यह पैसा मिला - धूल। समझ में आया?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह खुरचन कहा, इसी प्रकार पूर्व के पुण्य के कारण (संयोग) मिला है, परन्तु प्राप्त हुई चीज़ है, वह पाप है। यहाँ मिला हुआ, वह परिग्रह है। चौदह प्रकार के अभ्यन्तर परिग्रह और दस प्रकार के बाह्य परिग्रह हैं। उसमें प्राप्त हुई चीज़, वह पाप है। मिली है, वह पूर्व के पुण्य के कारण परन्तु मिली है, वह पाप है। इसलिए मिली हुई चीज़ोंवाला पापी है। वह अन्दर पुण्यवन्त नहीं है। उसे ऐसा कहा कि खुरचन कौआ अकेला नहीं खाता। उसी प्रकार तुझे कुछ पूर्व के पुण्य के कारण वर्तमान में पाप मिला हो, पूर्व के पुण्य के कारण वर्तमान में पाप (बाह्य परिग्रह मिला हो)... यह क्या कहा? पूर्व के पुण्य के शुभभाव, परमाणु पड़े थे। वह शुभ। मिला वह पुण्य नहीं परन्तु चीज़ मिली है, वह परिग्रह पाप है। जो परिग्रह है, वह पाप है। उस पाप की खुरचन में यदि अकेला खायेगा... आहाहा! और यदि भाग नहीं करेगा तो कौवे से भी जाएगा। वहाँ ऐसा कहा है।

मुमुक्षु : कौवे में से जाएगा, इसी प्रकार बनियों में से जाएगा, ऐसा नहीं कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : बनिया तो कहाँ रहा अब। बनिया था कब ? अरे! जगत को कहाँ बेचारा... कहाँ का कहाँ भटकता है। वहाँ ऐसा कौवे का कहा है, आचार्य ने कहा है, हों! मुनि स्वयं भावलिंगी सन्त हैं, नग्न मुनि दिगम्बर हैं, उनकी पुकार है कि यह प्राप्त हुई चीज़ है, वह पाप है। वह तुझे मिला है। पूर्व का पुण्य था, परन्तु मिला है, वह पाप—परिग्रह है। परिग्रह है अर्थात् पाप है। उस पाप में यदि पाप के परिणाम से खुरचन अकेला खर्च करेगा तो कौवे में से जाएगा, ऐसा है।

यहाँ तो इससे आगे बढ़कर कहते हैं... आहाहा! कि उन देने के परिणाम में जो पुण्य का भाव हुआ, वह पुण्य परिणाम मेरा है, यह भी मिथ्यादर्शन शल्य है। आहाहा! दुनिया कहाँ पड़ी और मार्ग कहाँ रह गया ? नाम धरावे जैन; जैन की गन्ध की खबर नहीं होती। समझ में आया ? आहाहा! यहाँ तो यह कहते हैं।

वहाँ जरा शुभभाव कराने को ऐसा कहा। पाप की वस्तु मिली, उसे घटाने के लिए, राग को घटाने के लिए वहाँ ऐसी बात की है परन्तु राग घटा है, वह पुण्य है। वह धर्म है और उससे मुझे लाभ है, ऐसा माने वह मिथ्यात्व का शल्य है। जो त्रिकाल महा शल्य संसार में भटकने का कारण है। आहाहा! समझ में आया ? यह यहाँ कहा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह विकल्प है, वह पाप है। मैंने दिया, मैंने पैसे दिये, यह मान्यता ही मिथ्यात्व है। पैसे कहाँ तेरे थे ? वे तो जड़ के हैं। वे पैसे मेरे हैं, यह मान्यता मिथ्यात्व शल्य है और वह पैसे मैं दूसरे को देता हूँ... वे तो जड़ हैं, जड़ का स्वामी होवे तब देता हूँ, ऐसा मानता है। यह तो मिथ्यात्व शल्य है। आहाहा!

मुमुक्षु : शल्यरहित मिथ्यात्व कौन सा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यात्व वही शल्य है। शल्यरहित भगवान आत्मा है, वह तो यहाँ सिद्ध करना है न ? आत्मा शल्यरहित है। वह पुण्य और पाप मेरे हैं, ऐसी मान्यतारहित और पुण्य-पापरहित है। वह पुण्य और पाप मेरे हैं, इससे रहित और पुण्य-पाप मेरे मैं करता हूँ, मुझे उसमें लाभ होता है, इससे रहित आत्मा है। आहाहा! कठिन काम है, भाई! जगत को बाहर में धमाल हो-हा (करना सुहाता है)। वे मुरझा जानेवाले हैं, मरकर सूख जानेवाले हैं। आहाहा! इसमें सुख दिखता है, वे सब मुरझा जानेवाले हैं।

यहाँ यह कहते हैं, प्रभु तो शल्यरहित है। आहाहा! जिसमें तीन शल्य की गन्ध नहीं, ऐसा तू परमात्मा अन्दर है, प्रभु! तुझे खबर नहीं है। आहाहा! समझ में आया? यह परमात्मा, उन्हें व्यवहारनय के बल से... अब आया। निश्चय से शल्यरहित परमात्मा स्वयं है, यह सत्य है। परन्तु व्यवहारनय के बल से, अब **व्यवहारनय के बल से कर्मपंकयुक्तपना होने के कारण...** कर्म के निमित्त के सम्बन्ध से होने के कारण... आहाहा! **(-व्यवहारनय से कर्मरूपी कीचड़ के साथ सम्बन्ध होने के कारण) 'उसे निदान, माया और मिथ्यात्वरूपी तीन शल्य वर्तते हैं'...** व्यवहार से। आहाहा! भगवान तो निःशल्य परमात्मस्वरूप ही है। आत्मतत्त्व है, वह (ऐसा है), यह निश्चय है परन्तु उसे व्यवहारनय से अर्थात् पर के आश्रय से होनेवाली दशा और उस दशा को अपनी मानना, ऐसी व्यवहारनय से तीन शल्य... तीन युक्त होने से तीन सहित व्यवहारनय से गिनने में आता है। आहाहा! है... ?

दो नय कहे हैं। निश्चयनय से परमात्मा निःशल्यस्वरूप है परन्तु कर्म और निमित्त की अपेक्षा से कर्म के सम्बन्ध के कारण उसमें व्यवहारनय से मिथ्यात्व, निदान, माया, इन शल्यसहित व्यवहारनय से दिखता है। आहाहा! समझ में आया? निश्चय से तो रहित ही है परन्तु व्यवहार के कारण यह अनादि से अज्ञानी जैन का साधु हुआ, दिगम्बर मुनि हुआ, पंच महाव्रत लिए परन्तु वह महाव्रत का राग है, वह दुःख है। उसे स्वयं को सुख का कारण मानकर मिथ्यात्व का सेवन किया है। आहाहा! कठिन काम है, भाई! यह सुनना कठिन पड़े, ऐसा है। सुनने में एक तो मिले, ऐसा नहीं है। बाहर की हो-हा.. आहाहा!

भगवान आत्मा **निश्चय से निःशल्यस्वरूप परमात्मा...** स्वरूप होने पर भी **व्यवहारनय के बल से...** पर की-निमित्त की अपेक्षा को लेकर, कर्मयुक्त होने से तीनों शल्यसहित सम्बन्धवाला होने के कारण, वे **तीन शल्य वर्तते हैं...** पर्याय में तीन शल्य वर्तते हैं। द्रव्य और गुण में नहीं। अरे रे! अब ऐसी बातें। द्रव्य जो वस्तु भगवान आत्मा, जो परमात्मा हुए, वे परमात्मा अन्दर था, वह हुआ। अन्दर था, वह हुआ। परमात्मा कहीं बाहर से नहीं आता। वह परमात्मा-शक्ति-स्वभाव था, वह प्रगट हुआ। इसी प्रकार यह परमात्मस्वरूप ही है परन्तु व्यवहारनय से कर्म के युक्त के सम्बन्ध के कारण व्यवहार से तीन शल्य वर्तते हैं। आहाहा! है? **तीन शल्य वर्तते हैं...** वापस व्यवहार नहीं है, ऐसा नहीं

है। व्यवहार झूठा है और वह तो पर्याय में भी परमात्मस्वरूप ही है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

तीन शल्य वर्तते हैं... पर्याय में, ऐसा कहा। निश्चय से परमात्मस्वरूप होने पर भी व्यवहारनय से... परचीज़ है, उसके सम्बन्ध में होने से, उसे वर्तमान में भी तीन शल्य वर्तते हैं। आहाहा! ... बहुत कहा। निश्चय और व्यवहार। अरे रे! जीव को कहाँ पड़ी है? क्या होगा मेरा? यहाँ से मरकर कहाँ जाऊँगा? देह छूटने का अवसर है, अब अधिक लम्बा कुछ है? पचास-साठ वर्ष हुए, वह पचास-साठ वर्ष अब कोई जीने वाला नहीं है। आहाहा! देह तो छूटनेवाला है। यह मिथ्यात्व शल्य विपरीत मान्यता सेवन करके... नरक और निगोद, कौवा और कुत्ते के भव में भटकेगा। वापस अनन्त काल में मनुष्यपना मिलना मुश्किल (पड़ेगा), ऐसी दशा होगी। भाई! आहाहा! है?

ऐसा उपचार से कहा जाता है। आहाहा! यह क्या कहा? भगवान आत्मा निश्चय से परमात्मस्वरूप होने पर भी व्यवहारनय से कर्म के सम्बन्ध से शल्यवाला वर्तता है, ऐसा उपचार से / व्यवहार से कहा जाता है। आहाहा! यह संसार उपचार से आत्मा को कहने में आता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : तब तो परमात्मा हो गया?

पूज्य गुरुदेवश्री : परमात्मा ही है। व्यवहारनय से उपचार से तीन शल्यवाला कहने में आता है। आहाहा!

'तीन शल्य वर्तते हैं' ऐसा उपचार से कहा जाता है। मुझे तो दूसरा कहना है। तीन शल्य व्यवहार से वर्तते हैं, ऐसा कहा है परन्तु व्यवहार से पैसेवाला, शरीरवाला, स्त्रीवाला, पुत्रवाला वर्तता है, यह बात यहाँ नहीं (की है)। आहाहा! जिसे सम्बन्ध नहीं है, स्त्री का आत्मा अलग, तेरा आत्मा अलग; उस शरीर के रजकण अलग, तेरे शरीर के रजकण अलग। अनन्त काल में कहीं मेल नहीं मिलता? इसलिए वे मेरे हैं, इस मान्यता में वर्तता है, परन्तु उस चीज़ में यह वर्तता नहीं है। आहाहा! समझ में आया इसमें? भाषा तो देखो! टीका... आहाहा!

मुमुक्षु : इस गाथा में तो उपचार अर्थात् झूठी बात।

पूज्य गुरुदेवश्री : उपचार है। उपचार भी व्यवहार। व्यवहार कहो या उपचार कहो, दोनों हैं। नहीं है, ऐसा नहीं है। त्रिकाल की अपेक्षा से झूठा है, उसकी अपेक्षा से सच्चा है। त्रिकाल की अपेक्षा से झूठा है परन्तु पर्याय में वर्तता है, इस अपेक्षा से नहीं है, ऐसा नहीं है। संसार और शल्य पर्याय में नहीं है, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसा काम है। ....जैनधर्म में ....भगवान की मूर्ति हो, एक फोटो हो उसकी पूजा करे, भक्ति करे। हो गया धर्म, जाओ। वह भटक मरता है तेईस घण्टे। उसमें धूल भी धर्म नहीं है, सुन न! उसमें राग की मन्दता हो तो पुण्य है और पुण्य है, वह मेरा है, यह तो मिथ्यात्व शल्य है। आहाहा! वह भी व्यवहार से वहाँ पर्याय में है। निश्चय में-वस्तु में है नहीं। आहाहा!

यहाँ क्या कहना है? कि तेरी पर्याय में वर्तता है, उसे उपचार कहते हैं। वस्तु यह शरीर, कर्म, स्त्री, कुटुम्ब, पैसा, बँगला, मकान कहीं तेरी पर्याय में नहीं वर्तते। वे तो उनके कारण वर्त रहे हैं। तेरे कारण नहीं वर्त रहे। इसलिए वे तुझमें वर्तते हैं, ऐसा हम नहीं कहते। आहाहा! और तेरे कारण वे वर्तते हैं, यह तो हम कहते ही नहीं। आहाहा! तुझमें व्यवहारनय से कर्म का सम्बन्ध होने से तीन शल्य वर्तते हैं, ऐसा कहते हैं। वे तीन शल्य वर्तने पर कर्मसहित वर्तते हैं, स्त्रीसहित वर्तते हैं, परिवारसहित वर्तते हैं, लक्ष्मीसहित वर्तते हैं, ऐसा हम व्यवहारनय से नहीं कहते। वे तो उन्हें वर्तने को और तुझे वर्तने को कुछ सम्बन्ध है नहीं। आहाहा! यह कैसा उपदेश होगा!

मुमुक्षु : है उसे असद्भूत व्यवहार कैसे कहा जाए?

पूज्य गुरुदेवश्री : असत् है। इस वस्तु की अपेक्षा से दूसरे द्रव्य अद्रव्य हैं। इस स्वद्रव्य की अपेक्षा से दूसरे द्रव्य अद्रव्य हैं, अक्षेत्र हैं, अकाल हैं, अभाव हैं। उनकी अपेक्षा से वे द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव हैं। इसकी अपेक्षा से अद्रव्य-अक्षेत्र-अकाल-अभाव हैं। इस आत्मा की पर्याय में हैं, ऐसा कहा नहीं। आहाहा! समझ में आया? इसकी पर्याय में वर्तता होवे तो तीन शल्य वर्तते हैं। आहाहा! ऐसा उपचार से अर्थात् व्यवहार से कहा जाता है। आहाहा! इसलिए वह व्यवहार से और उपचार से जो पर्याय में कहा जाता है उसे... **ऐसा होने से ही तीन शल्यों का परित्याग करके...** क्योंकि वे तो पर्याय में हैं, इसलिए बदल सकती है। इसके द्रव्य-गुण में नहीं। आहाहा! यह पुण्य और पाप के परिणाम के शल्य मेरे हैं और मैं इनका हूँ, ऐसे शल्य का त्याग करके... इन **तीन शल्यों का**

परित्याग करके... यह क्या कहा ? स्त्री, पुत्र, पैसे को छोड़कर, ऐसा नहीं कहा क्योंकि वे तो छूटे पड़े हैं। वे कहीं तेरे हैं नहीं। कुछ लेना और देना (है नहीं)। आहाहा! यह पैसा, तेरा बँगला, यह बगीचा, यह तो धूल उसके कारण से है। वह तुझमें है नहीं। तेरी पर्याय में वह तो है ही नहीं, वह तो उसके द्रव्य-गुण-पर्याय में वर्तते हैं। तुझमें वर्तता होवे तो व्यवहारनय से शल्य वर्तते हैं। आहाहा! सूक्ष्म पड़े, बापू! परन्तु क्या हो ? सवेरे प्रतिक्रमण की व्याख्या थी। यह भी प्रतिक्रमण की व्याख्या है। प्रतिक्रमण कहो, या धर्म कहो। आहाहा!

इन तीन शल्यरहित होना, वह धर्म है। तीन शल्यसहित रहना, वह अधर्म और संसार है। समझ में आया ? यह सब... पैसा-वैसा बहुत, करोड़ों रुपये, ये बँगले बड़े पचास-पचास लाख के और करोड़ के। ये... कहाँ बात करना ? यह कहाँ तेरी पर्याय में है ? यह तो उनके द्रव्य-गुण-पर्याय में वर्तते हैं। तेरी पर्याय में तो ये मेरे हैं, ऐसा शल्य है, उसमें तू वर्तता है। उस शल्य को त्याग, तेरी पर्याय में होवे, उसे त्याग। ऐसा त्याग-ग्रहण - पर का त्याग-ग्रहण तो है ही नहीं। आहाहा! आत्मा में पर का त्याग और ग्रहण तो है ही नहीं। यह शल्य है, उसे छोड़। आहाहा! ऐसा सुनना बहुत सूक्ष्म पड़ता है...

मुमुक्षु : ..... भाई .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह .... भाई थे न ? हाँ, यह सत्य। वे ... लाये थे। मेहमान लेकर आते हैं। अब इसमें क्या समझे ? बड़ी शत्रुंजय की यात्रा करने आये हों, ९९ बार यात्रा करे तो कल्याण हो जाए। यहाँ कहते हैं, अनन्त बार यात्रा की... राग की मन्दता होवे तो पुण्य है और पुण्य मेरा है, पुण्य धर्म है तो यह मिथ्यात्व है, लो! आहाहा! यह स्वीटजरलैण्ड में मिले, ऐसा नहीं है, हों! वहाँ तो पाप मिले ऐसा है। कहाँ गये हिम्मतभाई ? यह तुम्हारे भतीजे की बात करते हैं। कहते थे, पति-पत्नी दो जनें। रुपये करोड़ों हैं। एकाध करोड़ धर्म के नाम पर दे देते हों तो ? क्योंकि पाप से तो पैदा किया है और पाप से रखते हैं और वापस किसी को देंगे तो पाप देंगे। ऐसा कोई कहता था... भाई या कोई कहता था। आहाहा! अरे! क्या हो ?

अनन्त काल से भटकता इन शल्यों का त्याग कहते हैं। पर का त्याग कर, ऐसा नहीं कहा। पर का त्याग तो है ही, परन्तु मेरा (निज का) माने तो भी त्याग ही है। वे तुझमें नहीं हैं, उनमें तू नहीं है, परन्तु तेरी पर्याय में तीन शल्य हैं, अस्ति है। है, उसका त्याग कर।

आहाहा! समझ में आया? व्यवहार की बातें... ऐसा लगे। सभा भरे, लाखों लोग एकत्रित हों, हो-हा... हो-हा... ऐसी बात।

'तीन शल्य वर्तते हैं' ऐसा उपचार से कहा जाता है। ऐसा होने से ही... अर्थात् उपचार और व्यवहार से ही **तीन शल्यों का परित्याग...** यहाँ तो वस्तु में है नहीं। निःशल्य परमात्मस्वरूप है, उसकी दृष्टि करके तीन को छोड़ दे। आहाहा! यह व्यवहार का कथन है। यह जब अन्दर में स्थिर होता है, (तब) ये तीन उत्पन्न नहीं होते, उन्हें छोड़ता है— ऐसा कहने में आता है। वास्तव में तो ऐसा अर्थ है। परित्यागी का अर्थ यह है। आनन्दस्वरूप भगवान में स्थिर होता है, तब मिथ्यात्व शल्य उत्पन्न नहीं होती, उसका परित्याग करता है, ऐसा कथनमात्र से कहने में आता है। आहाहा!

परित्याग करके जो परम योगी... परम योगी मुनि धर्मात्मा **परम निःशल्य स्वरूप में रहता है,...** परम निःशल्य स्वरूप भगवान, राग के विकल्परहित चीज़ में जो अन्दर रहता है, **स्वरूप में रहता है,...** उसका नाम प्रतिक्रमण है। उसका नाम सामायिक और उसका नाम धर्म है। बाकी सब बातें हैं। आहाहा! है? **स्वरूप में रहता है, उसे निश्चयप्रतिक्रमणस्वरूप कहा जाता है,...** शल्य से... निःशल्यस्वरूप भगवान में स्थिर हुआ, इसलिए **उसे निश्चयप्रतिक्रमणस्वरूप कहा जाता है,...** आहाहा!

कारण कि उसे स्वरूपगत (-निज स्वरूप के साथ सम्बन्धवाला) वास्तविक प्रतिक्रमण है ही। उसे स्वरूप के साथ सम्बन्धवाला वास्तविक प्रतिक्रमण है। पर के साथ स्थिर था, वह अप्रतिक्रमण था। स्वरूप में स्थिर है, आनन्दस्वरूप भगवान... आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द की उग्र दशा में रहता है, उसका नाम सच्चा प्रतिक्रमण कहने में आता है। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)